

१. आहारशुद्धि

श्रीमद्भगवद्गीता में आहारशुद्धि को योगसिद्धि में सहायक बताते हुए कहा गया है – युक्ताहारविहारस्य अर्थात् जो मनुष्य उचित मात्रा में आहार का सेवन करता है वह व्यक्ति योग की सिद्धि कर सकता है। मनुष्य को उत्तम अर्थात् सात्त्विक आहार का ही सेवन करना चाहिए। गीता में सात्त्विक आहार का लक्षण इस प्रकार बताया गया है –

आयुः सत्त्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्धनाः

रस्याः स्निग्धा स्थिरा हृद्याः आहाराः सात्त्विकप्रियाः॥

अर्थात् आयु, तेज (ऊर्जा), शक्ति, स्वास्थ्य, सुख, प्रसन्नता को बढ़ाने वाले रसयुक्त, चिकने, शरीर में अधिक समय तक स्थिर रहने वाले और हृदय को प्रिय लगने वाले भोजन सात्त्विक होते हैं।

२. त्रिविध तपश्चर्या

योगसिद्धि में तप का साधक के लिए विशेष महत्त्व है। सभी प्रकार के द्वन्द्वों (शारीरिक, मानसिक, वाचिक) को सहन करना और उन पर नियंत्रण रखना तप कहलाता है। श्रीमद्भगवद्गीता में त्रिविध तपों का वर्णन इस प्रकार किया गया है –

१. शारीरिक तप – देवता, ब्राह्मण, गुरु एवं विद्वानों की पूजा या आदर सत्कार करना, पवित्रता रखना, सरल बैठना, ब्रह्मचर्य का पालन करना और किसी भी प्राणी को कष्ट न पहुँचाना शारीरिक तप कहलाता है।

२. वाचिक तप – वाणी से सम्बन्धित तप को वाचिक तप कहते हैं। जो उद्वेग न करने वाला, प्रिय एवं हितकारक वचन तथा जो वेदशास्त्रादि ग्रन्थों का अध्ययन और उस प्राप्त ज्ञान का अभ्यास करना वाचिक तप कहलाता है।
३. मानसिक तप – मन की प्रसन्नता, शान्त, सरल स्वभाव, चुप रहना, मन को अपने नियन्त्रण रखना, अन्तःकरण की शुद्धि करना मानसिक तप कहलाता है।

३. मनोनिग्रह

जब कोई साधक अभ्यास एवं वैराग्य द्वारा अपने मन को नियन्त्रित कर लेता है उसे मनोनिग्रह कहते हैं। सकल्प-विकल्पात्मक मन इन्द्रियों के माध्यम से सांसारिक विषयों में रमण करता है। और जब इन्द्रियनिग्रह के द्वारा इन्द्रियों का व्यापार अवरुद्ध कर दिया जाता है तो मन भी बुद्धि के अनुसार अभीष्ट लक्ष्य-सिद्धि में व्यापृत हो जाता है या वैराग्य के द्वारा सांसारिक विषयों से ही हटा दिया जाता है तो मन को बाह्य विषयों में रमण करने का अवसर प्राप्त नहीं होता। इस विषय में श्रीकृष्ण कहते हैं –

असंशय महाबाहो मनो दुर्निग्रह चलम्।

अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते॥

प्रस्तुत श्लोक के माध्यम से श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं – इसमें कोई संदेह नहीं है कि मन बड़ा चंचल और बड़ी कठिनता से वश में होने वाला है किन्तु इस चंचल मन को अभ्यास और वैराग्य के द्वारा साधक अपने वश में कर सकता है।

४. व्यवसायात्मिका बुद्धि

श्रीमद्भगवद्गीता में श्रीकृष्ण बुद्धि के स्वरूप का वर्णन करते हुए कहते हैं – इह व्यवसायात्मिका बुद्धिः एका। अर्थात् व्यवसायात्मक बुद्धि एक ही होती है। किसी भी कार्य को करने या न करने के विषय में मनुष्य के मस्तिष्क के अन्दर अनेक विचार उपस्थित होते हैं। उन विचारों के कर्त्तव्याकर्त्तव्य के विषय में ही द्वन्द्व प्रवर्तित होते हैं। मनुष्य बुद्धिपूर्वक उन विचारों का निर्णय करना चाहता है और समस्त विचार उसे बुद्धिपूर्वक लगते हैं लेकिन यदि बुद्धि अपने

अपने वास्तविक सात्त्विक रूप में स्थित हो तो वह एक विचार का निर्णय सरलता से करा देती है। बुद्धि के निम्न लक्षण प्राप्त होते हैं -

- (१) **अध्यवसायोनाम बुद्धि:** - जो विषयों का अध्यवसाय करती है उसे बुद्धि कहते हैं।
- (२) **निश्चयात्मिकाऽन्तःकरणवृत्ति बुद्धि:** - बुद्धि अन्तःकरण की वह वृत्ति है जो विषयों का निश्चय करती है।

निष्कर्षतः एक ही विचार का निर्णय करने के कारण बुद्धि को व्यवसायात्मक बुद्धि कहते हैं।